इकाई 2 विद्यापति का काव्य

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्‌देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विद्यापति का जीवन परिचय

2.3 विद्यापति का समय और रचना संसार

2.4 विद्यापति के काव्य में शृंगार

2.5 विद्यापति के काव्य में भक्ति

2.6 विद्यापति के काव्य में लोक जीवन

2.7 विद्यापति की भाषा और काव्य सौंदर्य

2.8 विद्यापति की कविता का वाचन और आस्वादन

2.9 सारांश

2.10 शब्दावली

2.11 उपयोगी पुस्तकें

2.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्‌देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप :

- महाकवि विद्यापति के संक्षिप्त जीवन-परिचय और उनकी जीवन-कथा से जुड़ी कुछ किंवदंतियों से परिचित हो सकेंगे;
- विद्यापति के रचनात्मक दौर की विविध परिस्थितियों से अवगत हो सकेंगे;
- विद्यापति पदावली में शृंगार के विविध रूपों से परिचित हो सकेंगे;
- विद्यापति पदावली में भक्ति की विविध धाराओं से अवगत हो सकेंगे;
- विद्यापति पदावली में चित्रित प्रेम और सौंदर्य में कवि के जनसरोकार की जानकारी हासिल कर सकेंगे;
- विद्यापति के रचना कौशल, शब्द-संयोजन की छटा, और उनके पद-लालित्य को जान सकेंगे; और
- विद्यापति के कुछ चुने हुए पदों की अर्थ-छवियों से परिचित हो सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्येतिहास में 993 ई. से 1318 ई. (आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार) तक के समय को आदिकाल माना जाता है। काव्य-प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इस युग को जिन बारह ग्रंथों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए वीरगाथाकाल कहा है, उनमें से दो ग्रंथ– 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका', महाकवि विद्यापति की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। ये दोनों कृतियाँ वीरगाथा मानी गई हैं, जबकि 'कीर्तिपताका' शृंगारिक रचना है। परंतु तब से लेकर अब तक के समाज में विद्यापति की लोकप्रियता का मूल आधार शृंगार, भक्ति और वीर-रस से ओत-प्रोत उनकी कोमलकांत 'पदावली' है। विद्यापति भारतीय साहित्य की शृंगार एवं भक्ति परंपरा के प्रमुख स्तंभ थे। राजदरबार से लेकर आम नागरिक के दैनंदिन जीवन तक में उनकी 'पदावली' ने संस्कार की तरह जगह पा ली थी, जिसका प्रभाव आज छह शताब्दी से अधिक का समय बीत जाने के बावजूद बरकरार है। उस दौर की प्रचलित भाषाएँ– संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश

पर उनका मातृभाषा मैथिली के समान अधिकार था। उनकी रचनाएँ संस्कृत, अवहट्ठ, और मैथिली– तीन भाषाओं में मिलती हैं। उनकी रचनाओं में समकालीन जनजीवन और भाषा का विलक्षण स्वरूप देखा जा सकता है। भक्त समुदाय ने उन्हें वैष्णव और शैव भक्ति के सेतुबंध के रूप में स्वीकारा। 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' का सूत्र देकर उन्होंने लोकभाषा की जनचेतना जाग्रत की। आज भी मैथिल लोकाचारों में उनकी शृंगार और भक्ति की रचनाएँ बरबस गूँजने लगती हैं। आगे इस पाठ में भारतीय साहित्य के प्रस्थान-बिंदु तय करने वाले ऐसे ही महान रचनाकार महाकवि विद्यापति के जीवन और उनकी पदावली पर चर्चा की जा रही है।

2.2 विद्यापति का जीवन परिचय

कवि कोकिल विद्यापति का पूरा नाम विद्यापति ठाकुर था। वे बिसइवार वंश के विष्णु ठाकुर की आठवीं पीढ़ी की संतान थे। उनकी माता गंगा देवी और पिता गणपति ठाकुर थे। वैसे रामवृक्ष बेनीपुरी उनकी माँ का नाम हाँसिनी देवी बताते हैं, पर विद्यापति के पद की भनिता (हासिन देवी पति गरुड़नरायन देवसिंह नरपति) से स्पष्ट होता है कि हाँसिनी देवी महाराज देवसिंह की पत्नी का नाम था। कहते हैं कि गणपति ठाकुर ने कपिलेश्वर महादेव (वर्तमान मधुबनी जिला में अवस्थित) की घनघोर आराधना की थी, तब जाकर ऐसे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई।

उनके जन्म-स्थान को लेकर देर तक विवाद चलता रहा। लोग उन्हें बंगला के कवि प्रमाणित करने का कठोर श्रम करते रहे। दरअसल शृंगार-रस से ओत-प्रोत उनकी राधा-कृष्ण विषयक 'पदावली' मिथिला के कंठ-कंठ में व्याप गई थी। उन दिनों विद्याध्ययन करने बंगाल के

शिक्षार्थी मिथिला आया करते थे। काव्य संचरण की प्रक्रिया जो भी रही हो, पर उन्हीं दिनों प्रबल कृष्णभक्त चैतन्य महाप्रभु के कानों में विद्यापति के पदों की मोहक ध्वनि पड़ी। वे मंत्रमुग्ध हो उठे और ढूँढ-ढूँढकर विद्यापति के पद कीर्त्तन की तरह गाने लगे। यह परंपरा चैतन्यदेव की शिष्य-परंपरा में भली भाँति फलित हुई। कई भक्तों ने तो उस प्रभाव में कीर्त्तनों की रचना भी कीं। फलस्वरूप बंगीय पदों में विद्यापति के काव्य-कौशल का वर्चस्व स्थापित हो गया। जब स्थान-निर्धारण की बात चली तो आनन-फानन बंगदेशीय बिस्फी राजा शिवसिंह और रानी लखिमा तलाश ली गईं और विद्यापति को बंगला का कवि प्रमाणित किया जाने लगा। अनुमान किया जा सकता है कि बंगला और मैथिली की लिपियों में कुछ हद तक साम्य होना भी इसमें सहायक हुआ होगा। पर महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, जस्टिस शारदाचरन मित्र, नगेंद्र नाथ गुप्त जैसे बंगीय विद्वानों ने अपनी भागीदारी से यह विवाद समाप्त कर दिया तथा इन्होंने स्पष्ट कहा कि विद्यापति मिथिला-निवासी थे। इस विषय पर सर्वप्रथम डॉ. ग्रियर्सन ने चर्चा शुरू की, और व्यवस्थित तर्क के साथ विद्यापति का बिहारवासी होना प्रमाणित किया।

विद्यापति का जन्म-स्थान बिस्फी (जिला– मधुबनी, मंडल– दरभंगा, बिहार) है। राज्याभिषेक के लगभग तीन माह बाद राजा शिवसिंह ने श्रावण सुदि सप्तमी, वृहस्पतिवार, लं.सं. 293 (1403 ई.) को ताम्रपत्र लिखकर गजरथपुर का यह गाँव बिस्फी विद्यापति को दिया था।

महापुरुषों के जीवन-मृत्यु का काल निर्धारित करते समय अक्सर हमारे यहाँ दुविधा रहती है, विद्यापति उसके अपवाद नहीं हैं। विद्वानों ने इस पर पर्याप्त तर्क-वितर्क किया है। किंतु अवहट्ठ में लिखी उन्हीं की एक कविता की कुछ प्रारंभिक पंक्तियों के आधार पर

उनका जन्म 1350 ई. (लक्ष्मण संवत 241, शक संवत 1272) तय होता है। इससे अधिक प्रमाणिक कोई गणना नहीं हो सकती।

विद्यापति बचपन से ही कुशाग्रबुद्धि और रचनाधर्मी स्वभाव के थे। उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा महामहोपाध्याय हरि मिश्र से हासिल की। उनके भतीजे महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र विद्यापति के सहपाठी थे। दस-बारह वर्ष की बाल्यावस्था से ही वे अपने पिता गणपति ठाकुर के साथ महाराज गणेश्वर के दरबार में जाने लगे थे। उनकी प्रसिद्ध कृति 'कीर्तिलता' में चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के मिथिला के क्षेत्रीय जनजीवन की अराजक स्थिति का दारुण विवरण दर्ज है। 'बालचंद विज्जावड़ भासा, दुहु नहि लग्गड़ दुज्जन हासा' जैसी गर्वोक्ति से विद्यापति के आत्मविश्वास के साथ-साथ यह अर्थ भी लगाया जा सकता है कि इससे पूर्व उनकी कोई महत्वपूर्ण रचना प्रकाश में नहीं आई थी। इन पंक्तियों का एक निहितार्थ यह भी लगाया जा सकता है कि विद्वत्समाज में ईर्ष्या वश विद्यापति के लिए कुछ अवांछित टिप्पणियाँ भी हुई होंगी, जिस कारण उन्हें सज्जन-दुर्जन की घोषणा करनी पड़ी होगी। 'कीर्तिपताका' का रचनाकाल भी यही माना जाता है, जबकि इस कृति की अंतिम पुष्पिका में शिवसिंह का यशोगान हुआ है।

उनके पद 'भनइ विद्यापति सुनु मंदाकिनि' तथा 'दुल्लहि तोहर कतए छथि माए' से ज्ञात होता है कि उनकी पत्नी का नाम मंदाकिनि और पुत्री का नाम दुल्लहि था। उनके पुत्र का नाम हरपति और पुत्रवधू का नाम चंद्रकला था। 1439 ई. (लक्ष्मण संवत् 329) के कार्तिक धवल त्रयोदशी के दिन महाकवि विद्यापति का अवसान हुआ। किंवदंतियों में सुना जाता है कि उनकी चिता पर अकस्मात शिवलिंग प्रकट हो गया। वहाँ आज भी शिवमंदिर है। फागुन महीने में वहाँ मेला लगता है। पहले वहाँ छोटा-सा मंदिर हुआ करता था, बहुत बाद के दिनों

में बालेश्वर चौधरी नामक किसी जमींदार ने वहाँ बड़ा-सा मंदिर बनवाकर, महाकवि विद्यापति का नामोनिशान मिटाकर उस मंदिर का नाम बालेश्वरनाथ रख दिया। सुना यह भी जाता है कि बी.एन.डब्ल्यू. रेल पटरी का प्रारंभिक नक्शा विद्यापति की चिता से गुजर रहा था। रेलपथ निर्माण हेतु जब वहाँ के पेड़ों की डालें काटी जानी लगीं, तो टहनियों से खून निकलने लगे, और रेल-निर्माण के इंजीनियर घनघोर रूप से बीमार पड़ गए। फिर वहाँ रेलपथ को टेढ़ा किया गया।

2.3 विद्यापति का समय और रचना संसार

विद्यापति का युग न केवल मिथिला के लिए, बल्कि पूरे भारतवर्ष के लिए सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक– हर दृष्टि से उथल-पुथल से भरा था। सिलसिलेवार आक्रमण के कारण पूरा जनजीवन हर समय दहशत में पड़ा रहता था। दिल्ली से लेकर बंगाल तक की यात्रा में आक्रमणकारियों और आक्रांताओं के जय-पराजय की तो अपनी स्थिति थी, पर उस दहशत में सामान्य नागरिक भी मन से व्यवस्थिति नहीं रह पाते थे। आक्रमण को जाते हुए उत्साह में और लौटते समय पराजय की हताशा में सैनिक कहाँ – कितना – किसको आहत करते थे, उन्हें पता नहीं होता। पीढ़ी-दर-पीढ़ी अहंकार-तुष्टि और वर्चस्व-स्थापना के लिए तरह-तरह के गठबंधन बन रहे थे। सामंतों को भी तो अपनी अस्मिता कायम रखनी होती थी। पर इन सबके बीच साहित्य एवं कला के लिए जगह भी बनती रहती थी। जाति-व्यवस्था और कठोर हो रही थी, पर राजनीतिक दृष्टिकोण से उसमें परिवर्तन की अपेक्षा देखी जा रही थी। हिंदू-मुसलमान के बीच एक-दूसरे को समझने की नई दृष्टि विकसित हो रही थी। आर्थिक-सामाजिक जरूरतों के चलते दोनों एक-दूसरे के करीब आ रहे थे। कला, साहित्य, संस्कृति,

धर्म तथा दर्शन संबंधी मान्यताओं को लेकर दोनों के बीच संवाद की बड़ी जरूरत आन पड़ी थी; जिसमें साहित्य की महती भूमिका अनिवार्य थी। ऐसे समय में विद्यापति की अन्य रचनाओं का जो योगदान है, वह तो है ही, उनकी 'पदावली' ने प्रेम, भक्ति और नीति के सहारे बड़ा काम किया। पदलालित्य, माधुर्य, भाषा की सहजता, मोहक गेयधर्मिता से मुग्ध होकर समकालीन और अनुवर्ती साहित्य-कला प्रेमी एवं भक्तजन भाषा, भूगोल, संप्रदाय, मान्यता, जाति-धर्म के बंधन तोड़कर विद्यापति के पद गाने लगे थे। उनका एक घोर शृंगारिक पद है– 'कि कहब हे सखि आनंद ओर, चिर दिने माधव मंदिर मोर...' (हे सखि, बहुत दिनों बाद माधव मुझे अपने कक्ष में मिले, मैं अपने उस आनंद की कथा तुम्हें क्या सुनाऊँ!)। किंतु चैतन्य महाप्रभु इस पद को गाते-गाते इस तरह विभोर हो जाते थे कि उन्हें मूर्छा आ जाती थी।

विद्यापति एक तरफ ओयनबार वंश के कई राजाओं की शासकीय नीति देखकर अनुभव-संपन्न हुए थे, तो दूसरी तरफ समकालीन आर्थिक, राजनीतिक, शासकीय परिस्थितियों के बीच लोक-वृत्त के सूक्ष्म मनोभावों को अनुरागमय दृष्टि से देख रहे थे। दरबार संपोषित रचनाकार होने के बावजूद चारणवृत्ति उनका स्वभाव न था। सिलसिलेवार आक्रमण के बर्बर समय में दहशतपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे जनमानस की जैसी दशा वे देख रहे थे, उसमें बड़े कौशलपूर्ण ढंग से सामाजिक दायित्व निभाने की जरूरत थी। इतिहास साक्षी है कि हर काल के बुद्धिजीवी समकालीन समाज और शासन के दिग्दर्शक होते आए हैं। प्रत्यक्ष परिस्थितियों में स्पष्टतः उपस्थिति शासकीय उन्माद और लोक जीवन की हताशा को अनदेखा कर नए संबंधों की सुस्थापना हेतु सौंदर्य और प्रेम से बेहतर कुछ भी नहीं होता; फलस्वरूप विद्यापति ने प्रेम को ही अपने रचना-संधान का मुख्य विषय बनाया। संस्कृत, अवहट्ठ और

मैथिली– तीन भाषाओं में रचित उनकी रचनाएँ गवाह हैं कि वे कर्मकांड, धर्मशास्त्र, दर्शन, न्याय, सौंदर्यशास्त्र, संगीतशास्त्र आदि के प्रकांड पंडित थे। भक्ति रचना, श्रृंगारिक रचनाओं में मिलन-विरह के सूक्ष्म मनोभाव, रति-अभिसार के विशद चित्रण, कृतित्व-वर्णन से राजपुरुषों का उत्साह वर्द्धन और नीति शास्त्रों द्वारा उन्हें कर्त्तव्यबोध देना, सामान्य जनजीवन के आहार-व्यवहार की पद्धतियाँ बताना आदि हर क्षेत्र की समीचीन जानकारियाँ उनकी कालजयी रचनाओं में दर्ज हैं। शास्त्र और लोक के संपूर्ण विस्तार पर उनका असाधारण अधिकार था। उनकी प्रमुख साहित्यिक कृतियाँ हैं– 'कीर्तिलता', 'कीर्तिपताका', 'भूपरिक्रमा', 'पुरुष परीक्षा', 'लिखनावली', 'गोरक्ष विजय', 'मणिमंजरी नाटिका', 'पदावली'। धर्मशास्त्रीय प्रमुख कृतियाँ हैं– 'शैवसर्वस्वसार', 'शैवसर्वस्वसार-प्रमाणभूत संग्रह', 'गंगावाक्यावली', 'विभागसार', 'दानवाक्यावली', 'दुर्गाभक्तितरंगिणी', 'वर्षकृत्य', 'गयापत्तालक'। इन सब में सर्वाधिक लोकप्रिय रचना उनकी 'पदावली' मानी गई।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के साथ उत्तर के रूप में दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प का चुनाव कीजिए।

   (क) 'कीर्तिपताका' किस प्रकार की रचना है?

   (i) हास्यपरक (ii) नीतिपरक (iii) श्रृंगारिक (iv) भक्तिपरक

   (ख) विद्यापति की रचनाएँ इनमें से किस भाषा में नहीं मिलती हैं?

(i) संस्कृत (ii) अवधी (iii) अवहट्ठ (iv) मैथिली

(ग) विद्यापति की किस रचना में चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के मिथिला क्षेत्र की अराजक स्थिति का वर्णन मिलता है?

(i) पदावली (ii) कीर्तिलता (iii) पुरूष परीक्षा (iv) गोरक्ष विजय

(घ) किसके संबंध में यह प्रसिद्ध है कि वे विद्यापति के पद को गाते-गाते मूर्छित हो जाते थे?

(i) चैतन्य महाप्रभु (ii) नामदेव (iii) नंददास (iv) इनमें से कोई नहीं।

(ङ) मैथिली भाषा के अतिरिक्त अन्य किस भारतीय भाषा के लोगों ने विद्यापति को अपनी भाषा का कवि माना?

(i) मराठी (ii) राजस्थानी (iii) सिंधी (iv) बंगला

2. विद्यापति की प्रमुख रचनाओं का परिचय दस पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 विद्यापति के काव्य में शृंगार

विद्यापति की 'पदावली' के पद दो तरह के हैं– शृंगारिक पद और भक्ति पद। इसके अलावा कुछ ऐसे पद भी हैं, जिनमें प्रकृति, समाज, नीति, संगीत आदि जीवन-मूल्यों को रेखांकित किया गया है। शृंगारिक पदों में वयःसंधि, नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, मिलन-अभिसार, मान-मनुहार, संयोग-वियोग, विरह-प्रवास आदि का विलक्षण चित्र उकेरा गया है। ऐसे पदों की संख्या साढ़े सात सौ से अधिक है। उल्लेखनीय है कि अपने प्रिय सखा राजा शिवसिंह के तिरोधान (1406 ई.) के बाद से विद्यापति ने कोई शृंगारिक पद नहीं रचा; बाद के समय की उनकी सारी ही रचनाएँ भक्ति-प्रधान पद हैं, या फिर नीति, शास्त्र, धर्म, आचार से संबंधित विचार। भक्ति-प्रधान पदों की संख्या लगभग अस्सी हैं; जिसमें शिव-पार्वती लीला, नचारी, राम-वंदना, कृष्ण-वंदना, दुर्गा, काली, भैरवि, भवानी, जानकी, गंगा वंदना आदि शामिल हैं। शेष पदों में ऋतु-वर्णन, बेमेल विवाह, सामाजिक जीवन-प्रसंग, रीति-नीति-संभाषण-शिक्षा आदि रेखांकित है।

उनके शृंगारिक पदों के प्रेम और सौंदर्य-विवेचन के आधार राधा-कृष्ण विषयक पद हैं। गौरतलब है कि पूरे भारतीय वाङ्मय में राधा-कृष्ण की उपस्थिति पौराणिक गरिमा और विष्णु के अवतार– कृष्ण की अलौकिक शक्ति एवं लीला के साथ है। पर, विद्यापति के राधा-कृष्ण

अलौकिक नहीं हैं, पूरी तरह लौकिक हैं, उनके प्रेम-व्यापार के सारे प्रसंग सामान्य नागरिक की तरह हैं। पूरी 'पदावली' में प्रेम और सौंदर्य वर्णन के किसी बिंदु पर वे आत्मलीन नहीं दिखाई देते। हर पद में रसज्ञ और रसभोक्ता के रूप में किसी न किसी राजा, सुलतान की दुहाई देते हैं; या नायक-नायिका को प्रबोधन-उपदेश देते हैं। पूरी 'पदावली' में प्रेम-व्यापार के हर उपक्रम– विभाव, अनुभाव, दर्शन, श्रवण, अनुरक्ति, संभाषण, स्मरण, अभिसार, विरह, वेदना, मिलन, उल्लास, सुरति-चर्चा, सुरति-बाधा, आशा-निराशा या फिर सौंदर्य-वर्णन के हर स्वरूप– नायिका भेद, वयःसंधि, सद्यःस्नाता, कामदग्धा, नवयौवना, प्रगल्भा, आरूढ़ा, स्वकीया, परकीया आदि को रेखांकित करते हुए विद्यापति सतत तटस्थ ही दीखते हैं। पूरी 'पदावली' में विद्यापति भगवद्गीतोपदेश के कृष्ण की तरह लिप्त होकर भी निर्लिप्त प्रतीत होते हैं। हर समय वे अपने नायक-नायिका के मनोभावों को रेखांकित कर एक संदेश देते हुए दीखते हैं। जीवन में सौंदर्य और प्रेम के शिखरस्थ स्वरूप को रेखांकित करते हुए वे सभी पदों में जीवन-मूल्य का संदेश देते प्रतीत होते हैं। नागरिक मन से हताशा मिटाने और राजाओं, सुलतानों के हृदय में मानवीय कोमलता भरने का इससे बेहतर उपाय संभवतः उस दौर में और कुछ नहीं हो सकता था। इसलिए विद्यापति रचित 'पदावली' के अनुशीलन की पद्धति उसमें चित्रित प्रेम-प्रसंग और सौंदर्य-निरूपण में कामुकता से परांग्मुख होकर जीवन-मूल्य की तलाश होनी चाहिए। आम नागरिक की तरह उनकी नायिका विरह में व्यथित-व्याकुल होती है और नायक का स्मरण करती है, उन्हें पाने का उद्यम करती है, किसी तरह की अलौकिकता उनके प्रेम को छूती तक नहीं। उन्हें चंदन-लेप भी विष-बाण की तरह दाहक लगता है, गहने बोझ लगते हैं, सपने में भी कृष्ण दर्शन नहीं देते, उन्हें अपने जीने की स्थिति शेष नहीं दीखती। अंत में कवि नायिका को गुणवती बताकर मिलन की सांत्वना के साथ प्रबोधन देते हैं। मिलन की

स्थिति में प्रेमातुर नायिका सभी प्रकार से सुखानुभव लेती है। भावोल्लास से भरी नायिका अपने प्रियतम की उपस्थिति का सुख अलग-अलग इंद्रियों से प्राप्त कर रही है– रूप निहारती है, बोल सुनती है, वसंत की मादक गंध पाती है, यत्नपूर्वक क्रीड़ा-सुख में लीन होती है, रसिकजन के रसभोग का अनुमान करती है। जाहिर है कि योजनाबद्ध ढंग से अपनी रचनाशीलता में आगे बढ़ रहे कवि को अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विलक्षण रूप से संपन्न भाषा के साथ-साथ अभिव्यक्ति के सभी अवयवों पर पूर्ण अधिकार था।

2.5 विद्यापति के काव्य में भक्ति

भक्ति और शृंगार– भले ही दो भाव हों, पर दोनों का उत्स एक ही है। दोनों का मूल अनुराग और समर्पण है। दोनों ही भाव व्यक्ति के मन में प्रेम से शुरू होते हैं। वैसे तो अभी भी कुछ लोग मिल जाएँगे जो भक्ति और प्रेम को दो दिशाओं का व्यापार मानते हैं। वे सोचते हैं कि जब तक मनुष्य को ज्ञान नहीं होता, युवावस्था के उन्माद में वह स्त्री के रूप जाल में मोहवश फँसा रहता है, भोग में लिप्त रहता है; जब आँखें खुलती हैं, ज्ञान चक्षु खुलते हैं, तब वह भक्ति-भाव से ईश्वर की ओर मुड़ता है। पर ऐसा सोचना सर्वथा उचित नहीं है। वास्तविक अर्थों में दोनों ही उपक्रमों का प्रस्थान बिंदु एक ही है, व्यापार क्रम एक ही है। दोनों का क्रिया-व्यापार प्रेम के कारण ही होता है और दोनों ही में समर्पण भाव रहता है, स्वीकार भाव रहता है। प्रेम में प्रेमिका, प्रेमी के प्रति समर्पित होती है या प्रेमी प्रेमिका के प्रति, ठीक इसी तरह भक्ति में भक्त, भगवान के प्रति समर्पित होते हैं। मीरांबाई की काव्य साधना का उदाहरण हमारे सामने है, उन्हें कृष्ण की प्रिया मानें अथवा कृष्ण की भक्त, संशय हर स्थिति में मौजूद रहेगा।

विद्यापति की 'पदावली' में भक्ति और शृंगार के बीच की विभाजक रेखा को समझना थोड़ा कठिन है। माधव की प्रार्थना 'तोहि जनमि पुनु तोहि समाओत, सागर लहरि समाना' में भक्ति और शृंगार के इस सघन भाव को समझा जा सकता है। उत्स में विलीन हो जाने का यह एकात्म, आत्मा और परमात्मा की यह एकात्मता उनके यहाँ शृंगारिक पदों में बड़ी आसानी से मिलती है। अपने प्रेम-इष्ट के प्रति उपासिका का समर्पण इसी तरह का भक्तिपूर्ण समर्पण है।

अन्य भक्तिकालीन कवियों की तरह विद्यापति के यहाँ न तो स्पष्ट एकेश्वरवाद दिखेगा, न ही अन्य शृंगारिक कवियों की तरह लोलुप भोगवाद। एक डूबे हुए काव्य रसिक के इस समर्पण में ऐसी जीवनानुभूति है कि कहीं भक्ति, शृंगार पर और ज्यादातर जगहों पर शृंगार, भक्ति पर चढ़ता नजर आता है। उनके यहाँ भक्ति और शृंगार की धाराएँ कई-कई दिशाओं में फूटकर उनके जीवनानुभव को फैलाती हैं और कवि के विराट अनुभव संसार को दर्शाती हैं।

भक्ति और शृंगार के जो मानदंड आज के प्रवक्ताओं की राय में व्याप्त हैं, उस आधार पर महाकवि विद्यापति के काव्य संसार को बाँटें, तो राधा-कृष्ण विषयक ज्यादातर गीत शृंगारिक हैं, पर जो भक्ति गीत हैं, उनमें प्रमुख हैं– शिव स्तुति, गंगा स्तुति, काली वंदना, कृष्ण प्रार्थना आदि। भक्ति और शृंगार के विषय में वस्तुतः हमने कुछ धारणाएँ बद्धमूल कर ली हैं। विद्यापति के नख-शिख वर्णनों के कारण कुछ लोगों को उनकी भक्ति-भावना पर ही शक होने लगता है। पर विद्यापति के काव्य को समझने के लिए तत्कालीन काव्य की मर्यादाओं को समझना जरूरी है। विद्यापति के यहाँ जब-तब भक्तिपरक पदों में शृंगार और भक्ति का संघर्ष भी परिलक्षित होता है। शृंगारिक गीतों में सौंदर्य, समर्पण, रमण, विलास, विरह, मिलन के इतने

पक्षों में तल्लीन विद्यापति; 'की यौवन पिय दूरे' के कवि विद्यापति; भक्तिपरक गीतों में एकदम से विनीत हो जाते हैं; पूर्व में किए गए रमण-विलास को सर्वथा निरर्थक बताते हुए 'तोहे भजब कोन बेला' कहकर पछताते हैं; 'तातल सैकत वारि बिंदु सम सुत मित रमणि समाजे' कह देते हैं। शृंगारिक गीतों की नायिका के मनोवेग को जीवन देनेवाले विद्यापति उस 'रमणि' को तप्त बालू पर पानी की बूँद के समान कहकर भगवान के शरणागत होते हैं। 'अमृत तेजि किए हलाहल पीउल' कहकर महाकवि स्वयं शृंगार और भक्ति के सारे द्वैध को खत्म कर देते हैं। यहाँ कवि की शालीनता स्पष्ट दीखती है। दो कालखंडों और दो मनःस्थितियों में एक ही रचनाकार द्वारा रचनाधर्म का यह फर्क कवि का पश्चाताप नहीं, उनकी तल्लीनता प्रदर्शित करता है कि वह जहाँ कहीं है, मुकम्मल है।

2.6 विद्यापति के काव्य में लोक जीवन

विद्यापति का रचना-फलक बहुआयामी था। जीवन व्यवहार के हर पहलू पर उनकी दृष्टि सावधान रहती थी। दरबार-संपोषित होने के बावजूद उनका एक भी रचनात्मक उद्यम कहीं चारण-धर्म में लिप्त नहीं हुआ। हर रचना से उन्होंने समकालीन चिंतक, सामाजिक अभिकर्ता, और राजकीय सलाहकार की प्रखर नैतिकता का निर्वाह किया। लोक जीवन की व्यावहारिकता, लालित्यपपूर्ण अर्थोत्कर्ष तथा चमत्कारिक सांगीतिकता से भरे उनके पद आम जन जीवन में अत्यंत लोकप्रिय हुए। उनकी पदावली में व्यक्ति के सामाजिक जीवन-यापन के अनेक प्रकरण– जन्म, नामकरण, मुंडन, उपनयन, विवाह, पूजा-पाठ, लोकोत्सव आदि उपलब्ध हैं। आज भी मैथिल जन जीवन का कोई उत्सव विद्यापति के गीत के बिना संपन्न नहीं होता। रचनाकाल की सुनिश्चित जानकारी उपलब्ध न होने के बावजूद कहा जा सकता

है कि ये पद एक लंबे समय-फलक में रचित हैं। मिथिला समेत पूरे पूर्वांचलीय प्रदेशों– बंगाल, असम एवं उड़ीसा में वैष्णव साहित्य के विकास में भाव एवं भाषा माधुर्य के कारण विद्यापति की 'पदावली' का अपूर्व योगदान रहा है। वैष्णव भक्तों के प्रयास से इन गीतों का प्रचार-प्रसार मथुरा-वृंदावन तक हुआ। प्राप्त जानकारी के अनुसार उनके पदों की संख्या लगभग नौ सौ हैं। शिवसिंह के तिरोधान के बाद अनेक वर्षों तक उन्होंने सांस्कृतिक रूप से समृद्ध क्षेत्र नेपाल की तराई, राजबनौली में रहकर रचनाकर्म किया।

बोध प्रश्न

3. निम्नलिखित प्रश्नों के आगे सही (✓) अथवा गलत (✗) का निशान लगाइए।

(क) विद्यापति की 'पदावली' में सिर्फ शृंगारिक रचनाएँ हैं। ( )

(ख) विद्यापति के पदों में शृंगार-विवेचन का आधार राधा-कृष्ण का प्रेम है। ( )

(ग) 'पदावली' में विद्यापति ने अपने समय के नायक और नायिका के मनोभावों को पिरोया है। ( )

(घ) विद्यापति के भक्तिपरक पदों में शृंगार और भक्ति का द्वंद्व भी दिखाई देता है। ( )

(ङ) विद्यापति की भक्ति सिर्फ कृष्ण तथा शिव को निवेदित है। ( )

4. 'किसी तरह की अलौकिकता विद्यापति के प्रेम को छूती तक नहीं है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

5. विद्यापति की भक्ति की प्रमुख विशिष्टताओं को रेखांकित कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

6. विद्यापति के काव्य में अभिव्यक्त लोक जीवन की विविधताओं पर प्रकाश डालिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

2.7 विद्यापति की भाषा और काव्य सौंदर्य

'पदावली' की भाषा मैथिली है, जबकि अन्य रचनाओं की भाषा संस्कृत एवं अवहट्ठ। पदों का संकलन तीन भिन्न-भिन्न भाषिक समाज– मिथिला, बंगाल और नेपाल के लिखित एवं मौखिक स्रोतों से हुआ है। भाषिक संरचना के गुणसूत्रों से परिचित सभी लोग इस बात से सहमत होंगे कि रचनाकार से मुक्त हुई गेयधर्मी रचना लोक-कंठ में वास करती हुई अनचाहे में भी कुछ-न-कुछ अपने मूल स्वरूप से भिन्न हो जाती है और फिर संकलक तक आते-आते उसमें स्थानीयता के कई अपरिहार्य रंग चढ़ जाते हैं। लोक-कंठ से संकलित सामग्री का तो यह अनिवार्य विधान है! विद्यापति 'पदावली' इसका अपवाद नहीं है। चौदहवीं से बीसवीं शताब्दी तक के छह सौ वर्षों की यात्रा में इन पदों में कब, कहाँ और किनके कौशल से क्या जुड़ा, क्या छूटा, यह जान पाना मुश्किल है। इसके अलावा एक तथ्य यह भी है कि इन पदों के प्रारंभिक संकलनकर्ताओं की मातृभाषा मैथिली नहीं थी। इसलिए ध्वनियों, शब्दों, पदों और संदर्भ-संकेतों को लिखित रूप में व्यक्त करते हुए निश्चय ही परिवर्तन आ गया होगा। पर यह तथ्य है कि विद्यापति के जीते जी 'पदावली' की पंक्तियाँ मुहावरों और कहावतों की श्रेणी पा गई थीं। जीवनोपयोगी विषय एवं सांगीतिकता के अलावा 'पदावली' की इस लोकप्रियता में लोक-रंजक भाषा की उल्लेखनीय भूमिका है। इनके एक-एक पद कई-कई रागों में गाए जाते हैं।

विद्यापति के सभी पद मात्रिक सम छंद में रचित हैं। अधिकांश पदों की रचना एक ही छंद में हुई है; पर कई पदों में मिश्रित छंद का भी उपयोग हुआ है; अर्थात दो-तीन या अधिक छंदों के चरणों का मेल किया गया है। लगभग सत्रह छंद– अहीर, लीला, महानुभाव, चंडिरका, हाकलि, चौपई, चौपाई, चौबोला, पद्धरि, सुखदा, उल्लास, रूपमाला, नाग, सरसी, सार, मरहठामाधवी, झूलना आदि का स्वतंत्र प्रयोग; और अखंड, निधि, शशिवदना, मनोरम, कज्जल, रजनी, गीता, गीतिका, विष्णुपद, हरिगीतिका, ताटंक, वीरछंद, समानसवैया जैसे छंदों के चरणों को अन्य छंदों में जोड़कर किया गया है। उल्लेख मिलता है कि उल्लास, नाग, रंजनी, गीता छंद के निर्माता विद्यापति ही हैं; क्योंकि उनसे पूर्व के किसी रचनाकार के यहाँ ये चारो छंद नहीं दीखते।

बोध प्रश्न

7. विद्यापति के काव्य-सौंदर्य के प्रमुख पक्षों को रेखांकित कीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

2.8 विद्यापति की कविता का वाचन और आस्वाादन

कविता का वाचन

देखिए– परिशिष्ट

कविता आस्वादन

- **नन्दक नन्दन कदम्बक तरू-तर,/धिरे-धिरे मुरलि बजाव। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत काव्य-पंक्तियाँ विद्यापति के 'पदावली' से ली गई है। इसमें राधा के प्रति कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया गया है।

व्याख्या

इस पद में कृष्ण (नंद के नंदन) की विरह-दशा का वर्णन है। वे वंशी बजाकर प्रियतमा राधा को मिलन-स्थल पर संकेत से बुला रहे हैं। कदंब के पेड़ तले कृष्ण धीरे-धीरे वंशी बजा रहे हैं। वे बार-बार वंशी बजाकर, घर बैठी प्रियतमा (निकेतन बइसल) को मिलन-स्थल और समय का संदेश भेज रहे हैं (अनुमान सहज है कि मिलन हेतु प्रेमी-प्रेमिका के बीच इस तरह के संकेत का अनुबंध पिछली मुलाकात में हो गया होगा)। यहाँ राधा को संबोधित करते हुए कहा गया है कि हे साँवरि! तुम्हारे प्रियतम कृष्ण तुमसे मिलने के लिए व्याकुल (विकल) हैं। यमुना तट के उपवन में उनके मन में ऐसा उद्वेग उठा है कि बार-बार उधर ही मुड़-मुड़कर तुम्हारी बाट जोह रहे हैं। दूध-दही-मक्खन (गोरस) बेचने जाती-आती हर गोपी से तुम्हारे बारे में वे पूछते रहते हैं। विद्यापति कहते हैं कि हे साँवरि! तुम तो परम बुद्धिमती (मतिमान)

हो, मेरी बात सुनो! सुबुद्धि (सुमति) संपन्न मधुसूदन पर भरोसा करो और उनकी अनुरक्ति, स्वीकारो।

विशेष

(i) भाषा मैथिलि है।

(ii) यद्यपि भारतीय समाज में राधा-कृष्ण ईश्वर के रूप में स्वीकार किए गए हैं, पर यहाँ प्रेम वर्णन में दिव्यता नहीं है वरन वह लोक जीवन के अनुरूप है।

- **देख देख राधा रूप अपार। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत काव्य-पंक्तियाँ विद्यापति के 'पदावली' से ली गई है। इस पद्य में राधा के सौंदर्य की अतुलनीयता का वर्णन किया गया है।

व्याख्या

इस पद में कवि अपूर्व सुंदरी राधा की रूपराशि देख कर चकित हैं। भूतल के समस्त सौंदर्य (लावण्य) का सार मिलाकर न जाने किस विधि विधाता ने इस नायिका के सौंदर्य की रचना की! इसके अंग-अंग का सौंदर्य देखकर मनुष्य की कौन कहे, सौंदर्य के देवता कामदेव (अनंग) तक का मन अधीर (अथीर) हो जाएगा, चंचल हो जाएगा, अपने सौंदर्य का उनका अहंकार टूट जाएगा। कामदेव के सौंदर्य का करोड़ों बार मंथन करने वाले जन को भी पृथ्वी पर निराश होकर गिरना पड़ेगा क्योंकि राधा के अपूर्व सौंदर्य के समान सौंदर्य कहीं नहीं

मिलेगा। इस सुमुखि के सौंदर्य को निहारकर लोग विभोर होते रहेंगे और इनके चरणों में लाखो-करोड़ो धन (लखिमि–लक्ष्मी) न्योछावर करते रहेंगे। विभोर हो-होकर मन ही मन अभिलाषा करते रहेंगे कि दिन रात इन चरणों की सेवा में लीन रहें, इन चरणों की पहरेदारी करते रहें।

- **माधव की कहब सुन्दरि रूपे। ...**

व्याख्या

विद्यापति के पदों में राधा के रूप-सौंदर्य का वर्णन देखते ही बनता है। वयःसंधि वाले पदों में नायिका की उम्र के क्रमिक विकास को रेखांकित करते हुए उन्होंने शारीरिक परिवर्तन का माँसल चित्र अत्यंत विलक्षणता से उकेरा है। रोचक प्रसंग यह है कि इस वर्णन में गहन माँसलता भरने हेतु वे प्रकृति-चित्र का अद्‌भुत परिपाक करते हैं। सौंदर्य निरूपण की यह विलक्षणता तब और निखर उठती है जब वयःसंधि के ऐसे वर्णन में राधा के मनोभाव भी स्पष्ट होने लगते हैं। इस वर्णन में कवि का वह कौशल स्पष्ट हो उठता है जिसमें वे रूपगर्विता नायिका का मनोवेग भी उकेर देते हैं। कवि कहते हैं कि हे माधव! उस सुंदरी राधा के रूप का वर्णन मैं क्या करूँ! न जाने विधाता ने कितने जतन से राधा का रूप सँवारा है, उन्हें देखकर नयन तृप्त हो जाते हैं। दोनों पैर कमल (पुष्प) के समान सुंदर हैं, चलती हैं तो प्रतीत होता है कि कोई मदमस्त हथिनी आ रही हो। स्वर्णवर्णी (कनक) केले के थंभ जैसी तराशी हुई जाँघों के ऊपर सिंह जैसी कमर और उसके ऊपर मेरु-समान दो वक्ष अतीव मनोहर हैं। उस मेरु (पर्वत) से ऊपर (मुखमंडहल में) कमल के समान खिली हुई दो आँखें कमलनाल के बिना भी रुचिकर लग रही हैं। गले में पड़ी हुई मणि-माणिक्य के हार बहुधारा

वाली गंगा (सुरसरि) लग रहे हैं, संभवतः इस सुरसरि के सान्निध्य से ही ये नालविहीन कमल जल के बिना भी सूख नहीं रहे हैं। उनके होठ बिंबा फल के समान और दंतपंक्ति अनार के दानों के समान सघन, सुगठित हैं, देदीप्यमान हैं। प्रतीत होता है कि सूर्य और चंद्रमा (रवि ससि) एक साथ पास-पास विराजमान हैं। सूर्य के प्रकाश से कमल तो खिल रहे हैं किंतु चंद्रमा को ग्रसित करने वाले राहु इतने दूर बसे हुए हैं कि वे निकट नहीं आ पाते, इसलिए इस चंद्रमा को ग्रहण लगने की भी कोई आशंका नहीं है।

इससे आगे कवि एक ही शब्द (सारंग) का श्लेषपूर्ण उपयोग कर नायिका के केलि-वर्णन में चमत्कार भर देते हैं। 'सारंग' शब्द के कई अर्थ– हरिण, कोयल, कामदेव, स्तन, चंद्रमा आदि का अनुपम अर्थोत्कर्ष यहाँ दर्ज है। कवि कहते हैं कि नायिका की आँखों का सौंदर्य हरिण-नयन के समान है, कंठ-ध्वनि कोयल के मधुर स्वर के समान, तीर-कमान जैसी भौंहों को देखकर प्रतीत होता है कि साक्षात कामदेव धनुष तानकर निशाना साधे हुए हैं। केलि के दौरान दोनों स्तनों पर उभरे दसों नाखूनों के वक्राकार निशान उग आए दस-दस चंद्रमा लग रहे हैं। और इस तरह केलि का मधुरसपान हो रहा है। 'दस सारंग' का अर्थ कुछ लोग मुखमंडल पर झूल रही केशराशि की दसेक लटें भी लगाते हैं। इस पूरे चित्र के निरूपण के बाद कवि विद्यापति कहते हैं कि सुंदरी! आपके समान मोहक रूप इस जगत में किसी और का नहीं है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण के मोहक रूप का वास्तविक ज्ञान राधा को है, उसी प्रकार राजा शिवसिंह रूप के नारायण हैं और उसका संपूर्ण ज्ञान उनकी रानी लखिमा देवी को है।

- **सुधामुखि के विहि निरमिल बाला। ...**

व्याख्या

इस पद में विद्यापति अपूर्व सुंदरी नायिका के विभिन्न अंगों का वर्णन करते हैं। रूपराशि की छटा से चकित होकर कवि कहते हैं कि चंद्रमा के समान शीतल और अमृत के समान सुखकारी इस सुधामुखि बाला का सृजन विधाता ने न जाने कैसे किया! ऐसा त्रिभुवन विजयी अपूर्व, मनभावन और मंगलमय रूप तो अन्यत्र दुर्लभ है। सुंदर मुखमंडल, काजर-रंजित चंचल आँखें; प्रतीत होता है कि स्वर्ण-कमल (कनक-कमल) के बीच कोई काल-भुजंग अठखेलियाँ कर रहा हो, सौंदर्य और चंचलता की प्रतिमूर्ति दो खंजन आपस में खेल कर रहे हों। यहाँ स्वर्ण-कमल का उपमान कवि ने नायिका के गौर-वर्ण मुखमंडल से लिया है। नाभि-विवर से ऊपर की ओर जाती हुई त्रिवली (रोमावली) को कवि ने नागराज (भुजगि– भुजंग) कहा है, जो सुंदरी नायिका के निःश्वास (निसास) से छूटी मादकता का प्यासा है; और उधर ही बढ़े जा रहा है; किंतु नायिका की नुकीली नाक देखकर उसे गरुड़ की चोंच का भ्रम होता है; और तुरंत वह वक्षों की संधि में (गिरि-संधि) में छिप जाता है। कामदेव के धनुष से निकले तीर तीन लोकों में सबसे प्रहारक होते हैं। इस तीर के शिकार किसी तरह बच नहीं सकते। इस तीर में तीन दिशाओं में तीन कोने माने गए हैं, जो क्रमशः तीनों लोकों के प्रतीक माने गए हैं। पुराण कथाओं में कामदेव के नयनों को बाण या तीर की संज्ञा दी गई है। उनकी भौंहों को कमान की संज्ञा दी गई है। विधाता के विचित्र विधान पर कवि को कौतुक होता है कि नायिका के इस मदनोन्मत्त तीन ही बाण से रसिक जन को ऐसा आहत करते हैं कि उनके समक्ष कोई विकल्प नहीं रह जाता। इसलिए यह सारा कुछ उन्हें ही सौंपकर कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुमुखि! इस रस का विधान कोई कैसे बताए, राजा शिव सिंह रूपनारायण हैं और लखिमा देवी का सौंदर्य इसका प्रमाण है।

- **ससन-परस खसु अम्बर रे/देखल धनि देह। ...**

व्याख्या

नायिका के सौंदर्य वर्णन का यह चमत्कारिक पद है। विलक्षण प्रतिमानों द्वारा यहाँ नायिका के रूप-रंग का चित्रण हुआ है। श्वासोच्छवास की सिहरन से, या वसंतमंजरी के स्पंदन से, या मंद पवन की थपकन से, या उरोजों की थिरकन से, या हृदय की धड़कन से (ससन–श्वैसन–श्वासोच्छवास; ससन–वसंतमंजरी; ससन–पवन; ससन–ससककर–खिसककर) – इनमें से किसी एक, या सभी के समेकित स्पर्श (परसें) से नायिका (धनि) का आँचल (अंबछ) खिसक गया, इस कारण उनकी देह की आभा देख पाया। प्रतीत हुआ जैसे घनघोर बादलों (नव जलधर) के भीतर से बिजली (बिजुरी-रेह–बिजली की रेखा) चमक उठी हो। नायिका को जाते हुए देखकर आज मेरे मन में तरह-तरह के भाव (मोहि उपजल रंग) उमड़ आए। उनको देखकर प्रतीत हुआ जैसे धरती से सहारा लिए बिना (महि निरअवलंब) कोई स्वर्णलता (कनकलता) भ्रमण कर रही हो। एक अपूर्व बात और देखी कि उस स्वर्णलता में एक जोड़ा उरोज-कमल विद्यमान है, जो सामने दीख रहे मुखचंद्र के कारण खिल नहीं रहा है। कमल तो सूर्य के समक्ष खिलता है, चंद्रोदय होते ही खिला हुआ कमल बंद हो जाता है। इस पद को गाते हुए कवि विद्यापति कहते हैं कि इस पूरे दृश्य का रस-मर्म कोई रसवंत ही समझ सकता है। हाँसिनी देवी के स्वामी राजा देवसिंह अगम पारखी रसिक हैं।

इस पद में उत्प्रेक्षा अलंकार का मनोरम परिपाक मिलता है। उपमेय को ही उपमान मान लेने पर, अर्थात अप्रस्तुत को प्रस्तुत मानकर वर्णन हो तो उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। इस अलंकार में उपमेय-उपमान में अभिन्नता दिखाई जाती है। यहाँ नायिका के अतिशय गौर वर्ण देह के

लिए बिजुरी-रेह की चमक प्रस्तुत कर उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे काव्य सौंदर्य उपस्थित हुआ है। अगली पंक्तियों में भी उत्प्रेक्षा की स्पष्ट छवि दिखाई देती है। नायिका के गौरवर्ण के कारण उन्हें स्वर्णलता और 'महि निरअवलंब' कहा गया है, यहाँ यह उल्लेख करना प्रसंगानुकूल होगा कि अमरबेलि का रंग स्वर्ण जैसा होता है, और उसका धरती से कोई संपर्क नहीं होता। इसी तरह फिर उनके मुख को चंद्रमा और नुकीले उन्नत उरोजों को बिना खिला हुआ कमल कहा गया है। अलंकार नियोजन में सतर्क, सटीक, सुनियोजित प्रतिमानों के उपयोग हेतु महाकवि विद्यापति के जादुई काव्य कौशल की प्रशंसा जितनी भी हो, कम होगी।

- **लोटइ धरनि, उठाए धरि सोई। /खने खन साँस खने खन रोई।। ...**

व्याख्या

इस पद में विद्यापति ने नायिका की दारुण विरह-दशा का वर्णन किया है। कृष्ण के वियोग में वे इतनी व्याकुल हैं कि धरती पर लोट-लोटकर अपना दुख व्यक्त कर रही हैं। धरती पर सोकर विरहाग्नि को शांत करना चाहती हैं। क्षण-क्षण रोती हैं, फिर तनिक साँस लेकर रोने लगती हैं। पल-पल मूर्छित होती हैं; कंठ अवरुद्ध हो जाता है; क्या होना बदा है, पता नहीं चलता। हे कृष्ण! नायिका की ऐसी दशा देखी नहीं जाती। आपके हाथों के स्पर्श के बिना इनका जीना संभव नहीं लगता। कोई भाग्य की दुहाई दे रहा है, कोई वेद-मंत्र जप रहा है, कोई नवग्रह पूज रहा है, कोई हाथ पकड़कर धातु-विचार कर रहा है। हे कृष्ण! नायिका के जीवन में आए विषम विरह का अनुमान कोई नहीं कर रहा है।

- **माधब, तोहें जनु जाह बिदेस। ...**

व्याख्या

विद्यापति का यह पद नायिका के आसन्न (निकट आए) विरह का वर्णन है। विरह शब्द का कोशीय अर्थ वियोग, अभाव, बिछुड़न है; पर साहित्य में इसे प्रियतम के वियोग में अनुभूत अनुराग के रूप में देखा जाता है। प्रस्तुत पद में प्रियतम-वियोग से होने वाली पीड़ा का वर्णन हुआ है। उन दिनों विदेश का अर्थ, आज जैसा नहीं था, परोक्ष होने का अर्थ विदेश लगा लिया जाता था। इस पद में नायिका, कृष्ण (माधव) से विदेश न जाने का निवेदन कर रही है। कह रही है– हे माधव! आप विदेश न जाएँ! क्योंकि आप विदेश जाएँगे तो अपने साथ मेरा आमोद-प्रमोद भी लिए चले जाएँगे, वापस संदेश क्या लाएँगे। वन मध्य यात्रा करते हुए आपकी मति बदल जाएगी। हे स्वामी! आप मुझे भूल जाएँगे। स्वामी! मैं हीरा, मणि, माणिक्य कुछ भी नहीं माँगूँगी, बस बार-बार आपको ही माँगूँगी। ज्यों ही आप जाने की बात करते हैं, मेरी आँखों में आँसू इस तरह भर आते हैं कि आपकी ओर देखा तक नहीं जाता। एक ही नगर में रहकर यदि प्रियतम पर किसी और का अधिकार हो जाए, तो मेरी अभिलाषा कैसे पूरी होगी। कोई कामिनी अपने प्रियतम के साथ हो तो वह बहुत सौभाग्यशालिनी (सोहागिनि) होती है, जैसे चंद्रमा के निकट तारा। विद्यापति कवि कहते हैं कि हे सुकामिनी! ध्यान से सुनो! अपने हृदय को दृढ़ करो, और धैर्य (सारा) रखो।

- **के पतिआ लए जायत रे/ मोरा पिअतम पास। ...**

व्याख्या

इस पद में नायिका की विरह-दशा का वर्णन है। प्रियतम के पास पत्र भेजने को आतुर नायिका व्याकुल होकर कहती हैं कि सावन का महीना आ गया, पावस के विरह का यह

असहनीय दुख हृदय सह नहीं पाता है; प्रियतम के बिना इस घर में अकेले रहा नहीं जा रहा है। हे सखि! इस दुनिया में दूसरों के दारुण दुख का भी संज्ञान कोई कहाँ लेता है! कृष्ण ने तो मेरा मन-हरण ही कर लिया, मेरा भी मन कहाँ पीछे रहता, उन्हीं के साथ चला गया, गोकुल तज कर कृष्ण के पास मधुपुर जा बसा, कितना अपयश हुआ! हे सखि! मेरे इन दारुण दुखों से भरा पत्र मेरे प्रियतम के पास कौन ले जाएगा? कवि विद्यापति इस वेदना को कम करते हुए प्रबोधन देते हैं कि हे नायिके! हे सखि! अपने प्रिय पर आस रखें। इस कार्तिक महीने में आपके मनभावन अवश्य आएँगे।

- **मोरा रे अँगनमा चनन केरि गछिया। ...**

व्याख्या

इस पद में भी नायिका के चरम भावोल्लास का विलक्षण वर्णन हुआ है। नायिका के आँगन में एक चंदन का पेड़ है। उस पेड़ पर बैठा एक कौआ आवाज दे रहा है (कुररए)। मिथिला में आज भी किसी घर-आँगन में बैठकर कहीं कोई कौआ आवाज लगाए, तो माना जाता है कि कोई अतिथि आने वाले हैं। अब यह मान्यता विद्यापति के इस पद की रचना से पहले से है या इस पद की यह पंक्ति ही कहावत हो गई, यह शोध का विषय है, पर इसमें संदेह नहीं है कि विद्यापति पदावली की असंख्य पंक्तियाँ उनके जीते-जी मिथिला में कहावत बन गई थीं। आज भी मिथिला क्षेत्र में किसी के आँगन में कौआ बोले तो घर की महिलाएँ अतिथि-आगमन की सूचना देने वाला दूत समझकर उसे रोटी का टुकड़ा देकर प्रसन्न करती हैं और आँगन में पानी का छिड़काव कर भूमि और वातावरण को शीतल करती हैं। इस पद की नायिका उस कौवे की आवाज सुनकर मुदित हो जाती है। अपने प्रवासी प्रियतम के

आगमन की कल्पना से पुलकित हो उठती है, और कौवे को वचन देती है– हे वायस (कौआ)! तुम्हारी इस आवाज से मैं प्रसन्न हूँ। यदि आज मेरे प्रियतम आ गए, तो वचन देती हूँ कि मैं तुम्हारी चोंच में सोने का आवरण मढ़ा दूँगी। प्रसन्नचित नायिका अपनी सखियों से कहती है– हे सखियों! तुम सब इस उल्लासमय क्षण में झूमर, लोरी (लोकरंजक गीतों की विशिष्ट शैलियाँ) गाओ। मैं मदन-आराधना में जाती हूँ। फिर वह विकल भी हो उठती है– चारों ओर खिले चंपा, मौलश्री की सुषमा और चाँद के शीतल प्रकाश से नहाई हुई रात उसे आह्लादित करने लगती है। व्याकुलता में चिंतित भी हो उठती है– ऐसे में मैं मदन-अराधना भी किस प्रकार करूँ? अत्यधिक रति-पीड़ा जो होगी! विद्यापति कवि गाते हैं– हे नायिके! तुम्हारे प्रीतम गुणों के सागर हैं। राजा भोगीश्वर सारे गुणों के आगार हैं, उनकी रमणी रानी पदुमा देवी हैं।

2.9 सारांश

महाकवि विद्यापति की रचनात्मकता राज्याश्रय में रहने के बावजूद चारण-काव्य की ओर कभी उन्मुख नहीं हुई। उनका राष्ट्र-बोध, संस्कृति-बोध, इतिहास-बोध और समाज-बोध सदा उनको संचालित करता रहा। उनके सामाजिक सरोकार, रचनात्मक दायित्व, नैतिकता एवं निष्ठा के प्रमाण 'पदावली' के अलावा संस्कृत और अवहट्ठ में भी रचित उनकी कृतियों में स्पष्ट दीखते हैं। पर उन्हें जन-जन तक पहुँचाने का श्रेय उनकी कोमलकांत 'पदावली' को जाता है। राजमहल से झोपड़ी तक, देवमंदिर से रंगशाला तक, प्रणय-कक्ष से चौपाल तक उनके पद समान रूप से आज भी समादृत हैं। वयःसंधि, पूर्णयौवना, विरहाकुल, कामातुरा, कामदग्धा आदि सभी कोटि की नायिकाओं के नख-शिख वर्णन; मान, विरह, मिलन, भावोल्लास वर्णन;

शिव, कृष्ण, दुर्गा, गंगा के स्तुति-पद में कवि ने सामाजिक जीवन के व्यावहारिक स्वरूप को उजागर किया है। उनके पद आज भी आम जनजीवन के सर्वविध सहचर बने हुए हैं; नागरिक जीवन के संस्कारों, लोकाचारों में लोकजीवन के अनुषंग बने हुए हैं। किसी एक रचनाकार के यहाँ स्थान-काल-पात्र, लिंग-जाति-वर्ग-संप्रदाय, शोक-उल्लास, जय-पराजय, नीति-धर्म-दर्शन-इतिहास-शासन, साहित्य-कला-संगीत-संस्कृति, युद्ध-प्रेम-पूजा जैसे तमाम क्षेत्रों का इतना सूक्ष्म अवबोध चकित करता है, पर सत्य यही है! ऐसे पूर्वज साहित्यसेवी के अवदान से गौरवान्वित भारतीय साहित्य धन्य है।

2.10 शब्दावली

वैष्णव – विष्णु के उपासक

शैव – शिव के उपासक

महामहोपाध्याय – एक प्रकार की उपाधि

वयःसंधि – पूर्ण किशोरावस्था के बाद व पूर्ण यौवन से पूर्व की बीच की स्थिति

नायिका-भेद – काव्यशास्त्र के अनुरूप नायिका की विभिन्न कोटियाँ

नख-शिख – नख से लेकर सिर तक शरीर के सभी अंगों के सौंदर्य का वर्णन

तिरोधान – मृत्यु

लौकिक – सांसारिक

दरबार-संपोषित –किसी राज दरबार में आश्रय पाए हुए

2.11 उपयोगी पुस्तकें

- *विश्वकवि विद्यापति* – सीताराम झा 'श्याम'; प्रकाशन विभाग, दिल्ली
- *विद्यापति* – शिवप्रसाद सिंह; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- *विद्यापति अनुशीलनः खंड 1 तथा 2* – वीरेंद्र सारंग (संपादक); बिहार हिंदी ग्रंथ अकादेमी, पटना

2.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) – (iii)

   (ख) – (ii)

   (ग) – (ii)

   (घ) – (i)

   (ङ) – (iv)

2. देखिए– भाग 2.3

3. (क) – ×

   (ख) – ✓

   (ग) – ✓

   (घ) – ✓

   (ङ) – ×

4. देखिए– भाग 2.4

5. देखिए– भाग 2.5

6. देखिए– भाग 2.6

7. देखिए– भाग 2.7

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY